भाषा सीखने के संकेतक

एन.सी.ई.आर.टी.*

संकेतक के मायने (शिक्षाशास्त्रीय मनोवैज्ञानिक, सामाजिक पक्ष)

बच्चा जन्म से सीखना शुरू कर देता है। यह सीखना आजीवन चलने वाली प्रक्रिया है। लेकिन जब हम विद्यालय के वातावरण में कुछ निर्धारित पाठ्यक्रम के ज़रिए सीखने-सिखाने की बात करते हैं तो इस सीखने की प्रक्रिया को चिह्नित करना भी उतना ही ज़रूरी है, जितना कि सीखना-सिखाना। दरअसल ये वे संकेतक हो सकते हैं जिनके ज़रिए न केवल अध्यापक बल्कि विद्यालय, प्रशासन, अभिभावक आदि भी सीखने की प्रक्रिया को समझ सकते हैं।

संकेतकों को समझने के लिए बच्चों के सामाजिक परिवेश, मनोवैज्ञानिक स्वरूप और उससे जुड़े इशारों और अभिव्यक्तियों को भी समझने की ज़रूरत होगी। यदि कोई बच्चा अपने सामाजिक परिवेश से अलग परिवेश का सामना करता है तो शुरू-शुरू में उसकी अभिव्यक्तियाँ हमारी अपेक्षा के अनुकूल नहीं होंगी। सबसे पहले हमें इन दोनों परिवेशों के बीच की दूरी को कम करने के लिए कुछ गतिविधियाँ करनी होंगी, जैसे—एक-दूसरे को जानने के मौके देने के लिए सामूहिक गतिविधियाँ करनी होंगी। इसी प्रकार अगर कोई बच्चा संकोची है, समझने और जानने के बाद भी अभिव्यक्त करने में हिचकिचाता है, तो उसे अकसर बोलने के मौके देने होंगे (जो वह खुद बोलना चाहे, बिना किसी टिप्पणी के, उसे अपनी भाषा में अपनी तरह से बोलने और लिखने के मौके)। इसी तरह से कुछ बच्चे इशारे से अपनी बात कहते हैं तो कुछ सांकेतिक भाषा में लिखते-बोलते हैं, इसलिए हमें भाषा के संकेतकों को समझने के दौरान सुनने-बोलने, पढ़ने-लिखने जैसे कौशलों को व्यापक नज़रिए से समझना होगा और भाषायी कौशलों को यांत्रिकता के सीमित दायरों से बाहर निकालना होगा। तभी हम सही मायने में भाषिक विविधता बच्चों की सांकेतिक भाषा, ब्रेल (Brail) आदि अपनी भाषा के साथ-साथ भाषा-अभिव्यक्ति के अलग-अलग ढंग, (इशारे, संकेत) को एक समावेशी कक्षा में स्थान दे पाएँगे। इस दृष्टि से संकेतक शिक्षाशास्त्रीय के साथ-साथ मनोवैज्ञानिक और सामाजिक भी होंगे।

---

* *लर्निंग इंडिकेटर्स एंड लर्निंग आउटकम्स एट दी एलीमेंटरी स्टेज,* एन.सी.ई.आर.टी. नयी दिल्ली

समावेशी कक्षा

समावेशी कक्षा का अर्थ है—सभी तरह के बच्चों को समाविष्ट करना यानी अंतरों की स्वीकृति, विविधता का उत्सव। समावेशन केवल भिन्न रूप से सक्षम बच्चों तक ही सीमित नहीं है, बल्कि इसका अर्थ किसी भी बच्चे का बहिष्कार न होना भी है। सीखने-सिखाने के तरीके और माहौल ऐसे हों कि सभी बच्चे यह महसूस करें कि वे, उनका घर, उनका समुदाय, उनकी भाषा और संस्कृति महत्वपूर्ण हैं। उनकी विविध क्षमताओं को मान्यता मिले। यह माना जाए कि सभी बच्चों में सीखने की क्षमता है।

यह महत्वपूर्ण है कि कक्षा में सभी बच्चों के लिए समावेशी माहौल तैयार किया जाए विशेषकर उनके लिए जिनको हाशिए पर धकेले जाने का खतरा है। उदाहरण के लिए, ये वे बच्चे भी हो सकते हैं जिनमें किसी प्रकार की कुछ असमर्थताएँ हैं या फिर वे बच्चे जो किसी भी सामाजिक-आर्थिक रूप से वंचित वर्ग के हैं। किसी भी बच्चे को असमर्थ आदि शब्दों से संबोधित करने से उनमें एक प्रकार की कुंठा और असहाय होने की भावना घर कर जाती है। इसे ध्यान में रखकर हमें विशेष रूप से सचेत होना होगा। हमारी विद्यालयी पाठ्यचर्या में चुनौती वाले बच्चों के लिए पर्याप्त अवसर हों, ताकि वे अपनी संभावनाओं का पूर्ण विकास कर सकें। इसलिए सीखने का ऐसा तरीका तथा माहौल बनाएँ जो सभी बच्चों की विशिष्ट आवश्यकताओं के अनुकूल हो। बार-बार समझाने-सिखाने पर भी यदि कोई बच्ची सीख नहीं पाती है तो उसकी ओर विशेष रूप से ध्यान दें। सीखने में कहीं पीछे रह जाने वाले ऐसे बच्चे देखने पर अन्य बच्चों से भिन्न नहीं लगते हैं इसलिए शिक्षक का सतर्क रहना ज़रूरी है, जैसे—यदि कोई बच्ची बार-बार सिखाने पर भी ‘त’ को ‘ꟻ’ ही लिखती है तो आप सजग हो जाएँ। इस तरह से कई बच्चे वर्णों को शुरुआत में उलटा लिखते हैं, लेकिन धीरे-धीरे सही लिखने लगते हैं। लेकिन यदि कोई बच्चा लंबे समय तक इस प्रकार वर्णों को उलटा लिखता रहे तो हो सकता है कि यह ‘डिस्लेक्सिया’ का लक्षण हो। ऐसे बच्चों को सिखाने के लिए अलग-अलग तरीके इस्तेमाल करने होंगे, जैसे—इन्हें चित्रों के माध्यम से सिखाया जा सकता है। इसी तरह अन्य प्रकार से शारीरिक रूप से चुनौती वाले बच्चों की विशेष आवश्यकताओं का ध्यान रखते हुए योजना बनाते हुए सीखने के अवसर दें। ये अवसर व्यक्तिगत रूप से, समूह में तथा जोड़े में बैठकर सीखने के हो सकते हैं। कक्षा में यदि कोई बच्ची ऐसी है जो देख नहीं सकती तो उसे जोड़े में किसी ऐसे बच्चे के साथ बैठाएँ जो उसे चित्र के बारे में बता सके। जोड़े में बैठाकर गतिविधि करवाते समय इस बात का ध्यान रखें कि जोड़ी के दोनों बच्चों को उस गतिविधि में समान रूप से भागीदारी का अवसर मिले, जैसे—एक बच्ची जो देख नहीं सकती, उसे दूसरी बच्ची चित्र के बारे में बता रही है तो स्पर्श या महसूस करके बताने वाली गतिविधि में दृष्टिबाधित बच्ची को बोलने के अवसर दें और बोलने या कुछ भी करने के ये अवसर सभी तरह के बच्चों को समान रूप से मिलें और उन्हें गतिविधि करने के लिए पर्याप्त समय भी हो। इस बात का ध्यान रखें कि सिखाने के तरीके सभी बच्चों के अनुभवों का पोषण करने वाले हों, चाहे वे किसी भी समाज-आर्थिक और सांस्कृतिक

वर्ग से आते हों। विभिन्न रूप से सक्षम बच्चे अवसर दिए जाने पर सीखने में प्रगति तो करते हैं, लेकिन अनेक बार इनकी प्रगति नज़र नहीं आती। इनकी प्रगति को समझने के लिए इनका रिकॉर्ड पोर्टफ़ोलियो में रखें। इस समावेशी कक्षा में भाषा के संकेतक क्या हों? इसके लिए पहले हमें यह समझना होगा कि हमें भाषा की ज़रूरत क्यों है?

भाषा क्यों?

'क्यों?' के जवाब में शायद हम यही कहेंगे कि अपनी बात दूसरों तक पहुँचाने के एक माध्यम के रूप में हम भाषा को पहचानते रहे हैं। इसीलिए हम सब यही परिभाषा पढ़ते हुए बड़े हुए कि भाषा अभिव्यक्ति का माध्यम है; यानी भाषा के ज़रिए ही हम कुछ कहते और लिखते हैं और किसी के द्वारा कहे और लिखे को सुनते और पढ़ते हैं। इसीलिए भाषा के चार कौशलों की बात इस तरह से प्रमुख होती चली गई कि हम भूल ही गए कि कहने-सुनने वाले के पास दिमाग भी है। बेर्टोल्ट ब्रेष्ट के शब्दों में कहें तो — 'जनरल, आदमी कितना उपयोगी है/ वह उड़ सकता है और मार सकता है। लेकिन उसमें एक नुक्स है — वह सोच सकता है।' बच्चे जो कुछ देखते या सुनते हैं उसे अपनी दृष्टि/ समझ से देखते-सुनते हैं और अपनी ही दृष्टि और समझ के साथ बोलते और लिखते हैं। यह दृष्टि/समझ एक परिवेश और समाज के भीतर ही बनती है इसलिए परिवेश और समाज के बीच बन रही बच्चे की समझ को भाषा दे सकने में समर्थ बनाने की कोशिश होनी चाहिए। जबकि हो यह रहा है कि जब बच्चे विद्यालय आते हैं तो घर की भाषा और विद्यालय की भाषा के बीच एक द्वंद्व शुरू हो जाता है। इस द्वंद्व से उच्च प्राथमिक स्तर के बच्चे जो कि किशोरवय में पहुँच रहे होते हैं, को भी जूझना पड़ता है। उनके पास अनेक सवाल हैं, अपने आस-पास के समाज और संसार से जिसका जवाब वे ढूँढ रहे हैं। अगर हमारी भाषा की कक्षा उनके सवालों और जवाबों को उनकी अपनी भाषा दे सके तो यह इसकी सार्थकता होगी। इसलिए संकेतकों में दिए गए भाषा-कौशलों को एक साथ जोड़कर पढ़ने-पढ़ाने की दृष्टि भी विकसित करनी होगी। यह भी ध्यान रखना होगा कि भाषा-कौशलों को बेहतर बनाने के लिए बच्चे के परिवेश में उस भाषा की उपयुक्त सामग्री उपलब्ध हो। खासतौर से द्वितीय भाषा के रूप में हिंदी पढ़ने वालों के लिए यह ज़रूरी होगा। भाषा सीखने-सिखाने के माहौल और प्रक्रिया के अनुसार ही बच्चों में सीखने के संकेतकों को हम धीरे-धीरे विकसित होता देख पाएँगे।

सीखने के संकेतकों के उपयोगकर्ताओं को इस बात का खास ध्यान रखना होगा कि ये संकेतक पाठ्यचर्या, पाठ्यक्रम, पाठ्यसामग्री तथा सतत और व्यापक आकलन एवं मूल्यांकन संबंधी प्रक्रिया की अगली कड़ी हैं। इसलिए इनका उपयोग करने से पहले इनके प्रारंभिक दस्तावेज़ों (पाठ्यचर्या, पाठ्यक्रम, पाठ्यसामग्री) को देखना-समझना ज़रूरी होगा।

भाषा संबंधी संकेतकों को कक्षावार तीन स्तरों पर तैयार किया गया है। पहला स्तर पहली से तीसरी कक्षा, दूसरा स्तर चौथी और पाँचवीं कक्षा तथा तीसरा स्तर छठी से आठवीं कक्षा तक के बच्चों के भाषा सीखने संबंधी संकेतकों की चर्चा करता है।

संकेतकों के बारे में चर्चा करने से पहले आइए, भाषा-कौशलों के बारे में कुछ ज़रूरी बातें समझ लें। आमतौर पर भाषा संबंधी कौशल हैं— सुनना-बोलना, पढ़ना और लिखना। यहाँ यह भी समझ लेना होगा कि भाषा के ये कौशल परस्पर एक-दूसरे से जुड़े हुए हैं तथा समझ कर सुनने-बोलने या पढ़ने-लिखने की गतिविधियाँ भी साथ-साथ होती रहती हैं न कि अलग-अलग।

सुनना-बोलना

सुनने और बोलने के कौशल में दक्षता से आमतौर पर हम यही चाहते रहे हैं कि बच्चे पढ़े और सुने को ज्यों का त्यों बोल दें। सुनने और बोलने में 'समझ' की भूमिका को हम भूलते चले गए। जबकि किसी बात पर प्रतिक्रिया न करने वाले (न सुनने वाले के अर्थ में) को हम यही कहते हैं— 'अरे भई तुम सुन ही नहीं रहे हो' ज़ाहिर है कि यहाँ 'समझ' के बिना सुनने का और बोलने का कोई मतलब नहीं लिया जा रहा है। पर हम पढ़ने-पढ़ाने की दुनिया में सुनने और बोलने के कौशल में 'समझ' की इस अहम भूमिका को भूलते चले गए। यह समझ ही है जो सुनने और बोलने को सार्थकता प्रदान करती है।

पढ़ना

भाषा-संकेतकों संबंधी आगे की चर्चा में पढ़ने को लेकर जो शिक्षण बिंदु दिए गए हैं, वे पढ़ने की स्थापित संस्कृति, जो पढ़ने को एक यांत्रिक कौशल के रूप में विकसित करने का समर्थन करती है, के विपरीत दिशा में जाते हैं। 'पढ़ना' मात्र किताबी कौशल न होकर एक तहज़ीब और तरकीब है। पढ़ना-पढ़कर समझने और उस पर प्रतिक्रिया करने की एक प्रक्रिया है। दूसरे शब्दों में हम यह कह सकते हैं कि पढ़ना बुनियादी तौर से एक अर्थवान गतिविधि है। हम ऐसा भी कह सकते हैं कि मुद्रित अथवा लिखित सामग्री से कुछ संदर्भों व अनुमान के आधार पर अर्थ पकड़ने की कोशिश 'पढ़ना' है।

लिखना

लिखना एक सार्थक गतिविधि तभी बन पाएगी जब बच्चों को अपनी भाषा, अपनी कल्पना, अपनी दृष्टि से लिखने की आज़ादी मिले। बच्चों को ऐसे अवसर मिलें कि वे अपनी भाषा और शैली विकसित कर सकें न कि ब्लैकबोर्ड पर लिखे या किताबों की इबारत या फिर अध्यापक के लिखे हुए की नकल करते रहें।

भाषा अर्जित करने और सीखने की प्रक्रिया सतत रूप से जारी रहती है, बशर्ते, बच्चों को एक बेहतर भाषिक परिवेश उपलब्ध हो। भाषा अर्जित करने की इस प्रक्रिया में बच्चे अनेक तरह के अनुभवों से समृद्ध होते चलते हैं। सामाजिक अनुभवों के साथ-साथ वे विविध भाषा-प्रयोगों से भी परिचित होते जाते हैं और इन सबके परिणामस्वरूप वे भाषा सीखने की किसी भी औपचारिक प्रक्रिया में दाखिल होने से पहले ही उनमें अपनी बात को कहने-सुनने की क्षमता होती है। बच्चों की भाषा सीखने संबंधी क्षमताओं के बारे में हमारी समझ सीखने-सिखाने के तरीकों को प्रभावित करती है। अतः यह ज़रूरी होगा कि हम बच्चों की इन क्षमताओं, भाषा सीखने-सिखाने संबंधी अपेक्षाओं और कुछ बेहद महत्वपूर्ण बिंदुओं को भी समझ लें। जैसा कि पहले कहा जा चुका है कि भाषा संबंधी संकेतकों को कक्षावार तीन स्तरों पर दिया गया है।

इन तीनों स्तरों पर भाषा सीखने-सिखाने के परिदृश्य को भी समझ लेना ज़रूरी होगा। आगे की चर्चा इसी परिदृश्य को विस्तार देती है

कक्षा तीन तक

बच्चे घर-परिवार एवं परिवेश से प्राप्त बोलचाल की भाषा के अनुभवों को लेकर ही विद्यालय आते हैं। पहली बार विद्यालय में आने वाला बच्चा शब्दों के अर्थ और उनके प्रभाव से परिचित होता है। लिपिबद्ध चिह्न और उनसे जुड़ी ध्वनियाँ बच्चों के लिए अमूर्त हैं, इसलिए पढ़ने का प्रारंभ अर्थ से ही हो और किसी उद्देश्य के लिए हो। यह उद्देश्य कहानी सुनकर-पढ़कर आनंद लेने के रूप में भी हो सकता है। धीरे-धीरे बच्चों में भाषा की लिपि से परिचित होकर अपने परिवेश में उपलब्ध लिखित भाषा को भी पढ़ने-समझने की जिज्ञासा उत्पन्न होती है। भाषा-शिक्षण की इस प्रक्रिया के मूल में बच्चों के बारे में यह अवधारणा है कि बच्चे दुनिया के बारे में अपनी समझ और ज्ञान का निर्माण स्वयं करते हैं। यह निर्माण किसी के सिखाए जाने या ज़ोर-ज़बरदस्ती से नहीं बल्कि बच्चों के स्वयं के अनुभवों और आवश्यकताओं से होता है। इसलिए बच्चों को ऐसा वातावरण मिलना ज़रूरी है जहाँ वे बिना रोक-टोक के अपनी उत्सुकता के अनुसार अपने परिवेश की खोज-बीन कर सकें।

यही अवधारणा बच्चों के भाषिक कौशलों पर भी लागू होती है। विद्यालय में आने पर बच्चे प्रायः स्वयं को बेझिझक अभिव्यक्त करने में असमर्थ पाते हैं, क्योंकि जिस भाषा में वे सहज रूप से अपनी राय, अनुभव, भावनाएँ आदि व्यक्त करना चाहते हैं वह विद्यालय में प्रायः स्वीकृत नहीं होतीं। भाषा-शिक्षण को बहुभाषी संदर्भ में रखकर देखने की आवश्यकता है। कक्षा में बच्चे अलग-अलग भाषायी-सांस्कृतिक पृष्ठभूमि से आते हैं। कक्षा में इनकी भाषाओं का स्वागत किया जाना चाहिए और उनमें बच्चों से सहज अभिव्यक्ति क्षमता का उपयोग करते हुए हिंदी पढ़ाई जानी चाहिए। शिक्षक बहुभाषिकता की महत्ता को समझकर कक्षा में उसका उपयोग करे, तभी वह बच्चों को अपने परिवेश में स्थित सांस्कृतिक और भाषिक विविधता के प्रति संवेदनशील बना सकता है। आज बहुभाषिकता को बच्चे के व्यक्तित्व विकास के लिए संसाधन के रूप में विकसित करने की आवश्यकता है।

कक्षा पाँच तक

चौथी कक्षा तक आते-आते बच्चे विद्यालय से परिचित हो जाते हैं और वहाँ के वातावरण में घुलमिल जाते हैं। विद्यालय का वातावरण और दूसरे बच्चों का साथ उन्हें हिंदी भाषा में निहित स्थानीय, ऐतिहासिक, सांस्कृतिक विविधताओं से परिचित कराता है। इसके अतिरिक्त वे अन्य भाषाओं के प्रति संवेदनशील भी हो जाते हैं। इस स्तर पर बच्चे की भाषा से जुड़े कौशलों की प्रकृति में गुणात्मक बदलाव आएगा। उनमें स्वतंत्र रूप से पढ़ने की आदत विकसित होगी। पढ़ी हुई सामग्री से वे संज्ञानात्मक और भावात्मक स्तर पर जुड़ेंगे और उसके बारे में स्वतंत्र और मौलिक विचार व्यक्त कर सकेंगे। यहाँ तक आते-आते लिखना एक प्रक्रिया के रूप में प्रारंभ हो जाता है और वह अपने विचारों को व्यवस्थित ढंग से लिखने लगते हैं।

कक्षा आठ तक

छठीं से आठवीं कक्षा के बच्चे किशोरावस्था में कदम रख रहे होते हैं। यह दौर मन, मानस और शारीरिक

परिवर्तन की दृष्टि से संवेदनशील होता है। इस नए संधि काल में विद्यालय, कक्षा और शिक्षक की सकारात्मक भूमिका छात्र-छात्राओं की ऊर्जा और जिज्ञासा को सार्थक स्वस्थ दिशा दे सकती है ताकि मननशील और संवेदनशील व्यक्ति के रूप में उनका विकास हो सके। इसके लिए ज़रूरी है कि वे कक्षा के साथ भावात्मक और बौद्धिक जुड़ाव महसूस कर सकें।

सौंदर्यबोध, साहित्यबोध और सामाजिक-राजनीतिक बोध के विकास की दृष्टि से स्कूली जीवन का यह चरण अत्यंत महत्वपूर्ण है, क्योंकि इस चरण में कई किस्म के बोध और दृष्टियों के अंकुर फूटते हैं। चाहे भाषायी सौंदर्य हो या परिवेशगत, कोई चीज़ सुंदर है तो क्यों है? यदि कोई वस्तु, रचना, फ़िल्म आदि अच्छी है तो वे कौन-से बिंदु हैं जो उसे अच्छा बनाते हैं, उनके बारे में स्पष्ट सोच होना बहुत ज़रूरी है।

प्रारंभिक कक्षाओं में समझकर पढ़ना सीख लेने के बाद अब छात्र-छात्राएँ पढ़ते समय किसी रचना से भावात्मक रूप से जुड़ भी सकें और कोई नई किताब या रचना सामने आने पर उसे उठाकर पलटने और पढ़ने की उत्सुकता उनमें पैदा हो। समाचार-पत्र के विभिन्न पन्नों पर क्या छपता है, इस बात की जानकारी उन्हें हो। समाचार पत्र में छपी किसी खबर, लेख या कही गई किसी बात का निहितार्थ क्या है? छात्र-छात्राएँ उसमें झलकने वाली सोच, पूर्वाग्रह और सरोकार आदि को पहचान पाएँ। कुल मिलाकर प्रयास यह होना चाहिए कि इस चरण के पूरा होने तक छात्र-छात्राएँ किसी भाषा, व्यक्ति, वस्तु, स्थान, रचना आदि का विश्लेषण करने, उसकी व्याख्या करने और उस व्याख्या को आत्मविश्वास व स्पष्टता के साथ अभिव्यक्त करने के अभ्यस्त होने लगें।

सीखने संबंधी संकेतक सीखने-सिखाने से जुड़ी अपेक्षाओं यानी पाठ्यचर्या संबंधी अपेक्षाओं की ओर ध्यान आकृष्ट करते हैं। भाषा सीखने के संकेतकों को गहनता से समझने और उसके अनुरूप अपनी कक्षा की प्रक्रियाओं को निर्धारित करने के लिए यह ज़रूरी है कि विभिन्न कक्षाओं में भाषा-पाठ्यचर्या की अपेक्षाओं को जान-समझ लिया जाए। पाठ्यक्रम संबंधी इन अपेक्षाओं को पूरे देश के बच्चों को ध्यान में रख कर (प्रथम भाषा के रूप में हिंदी पढ़ने वाले और द्वितीय भाषा के रूप में हिंदी पढ़ने वाले दोनों) तैयार किया गया है। और अधिक जानकारी के लिए एन.सी.ई.आर.टी. की वेबसाइट देखें (http://www.ncert.nic.in/departments/nie/dee/publication/pdf/LI_Final_Copy_Revised_29.12.14.pdf)